लोक संस्कृति का मिथकीय संसार

डॉ. गोरेलाल चंदेल

दाऊचौरा, खैरागढ़ (छ.ग.)
मो. 9425560759

लोक संस्कृति की मिथकीय दुनिया बहुत फैली हुई है। उसके पूरे फैलाव के भीतर ही लोक का विस्तार दिखायी देता है। कदम-कदम पर मिथ बनते भी हैं और टूटते भी है। टूटने की गति बहुत धीमी होती है जबकि बनने की गति बहुत तेज होती है। तब यह बड़ा सवाल उठता है कि आखिर मिथ का जन्म होता कैसे है? मिथ की रचना की दिशा में लोक चेतना को ले कौन जाता है? और उनका मकसद क्या होता है? क्या आदिम काल से ही मिथ की दुनिया निर्मित होती रही है? इन प्रश्नों से टकराये बिना मिथ के रचना संसार को समझना कठिन है। इसलिए हमें इतिहास के, रचित इतिहास से बहुत आगे जाना होगा और आदिमकाल के समाजशास्त्र को खंगालना होगा। आदिम काल की जीवन पद्धति से टकराना होगा। उनकी प्रकृति के साथ अनुकूलन के सूत्र को सुलझाना होगा। उनके क्रियाकलापों की नाप-जोख करनी होगी। यह भी जरूरी है कि मिथ जहां से पैदा होता है, उसकी उर्वरा भूमि की पड़ताल करनी होगी। तब ही हम मिथ की मिथकीय दुनिया को समझ पायेंगे। इसके साथ ही समाज विकास के साथ मिथ की विकासमान यात्रा के एक-एक कदम को जानने समझने में मूल सूत्र के भूमिका की पहचान करनी होगी।

प्रकृति की भौतिक क्रिया से पदार्थ की रचना होती है और आदिम मनुष्य अपने जीवन यापन के लिए, अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए निरंतर इन्हीं पदार्थों से टकराते हैं, द्वन्द्व करते हैं। इसी द्वन्द्व से उनकी चेतना या सोच या विचार पैदा होता है। चेतना ने ही मनुष्य के भोजन के लिए पत्थर को नुकीले हथियार में बदला। चेतना ने ही चकमक पत्थर से आग को जन्म दिया। चेतना ने ही खाद्य-अखाद्य में अंतर किया और चेतना ने ही मानव को अन्य पशुओं से अलग किया। चेतना और प्रकृति का द्वन्द्वात्मक संबंध लगातार चलते रहता है जिससे प्रकृति में बदलाव एवं परिवर्तन की गति दिखायी देती है और इसी के साथ चेतना भी विकास की दिशा में निरंतर गतिशील रहती है।

मिथ का सारा खेल चेतना का खेल है। यही उसकी उर्वरा भूमि भी है। तब यह सवाल उठता है कि मनुष्य की चेतना का जन्म कब और कैसे हुआ होगा। चेतना को विकसित करने वाले तत्व कौन से है। इस पर विद्वानों के अलग-अलग विचार हमें देखने को मिलेगा। दर्शन शास्त्र की परतों को जैसे-जैसे खोलने का प्रयास करते जायेंगे वैसे ही अलग-अलग तथ्य और विचार हमारे सामने आने लगता है। एक विचार भाववादी दर्शन का है जो आदि शंकराचार्य से लेकर हीगेल तक और परवर्ती हिगेलियनों तक फैला हुआ है। दूसरा विचार चार्वाक से लेकर फायरवाख और मार्क्स, एंगेल्स तक फैला हुआ है और परवर्ती प्रगतिशील विचारकों के माध्यम से इक्कीसवीं सदी तक आता है। पहला विचार चेतना की उत्पत्ति को 'परम प्रत्यय' की कृति मानते हैं। उनका मानना है कि चेतना की उत्पत्ति पहले होती है और चेतना को उत्पन्न करने वाली शक्ति पराशक्ति होती है। भौतिक शक्ति से चेतना की उत्पत्ति उनके विचार में असंभव है। पदार्थ की उत्पत्ति बाद में होती है और पदार्थ जड़ है, गतिहीन है और क्षणवादी है। वह नष्ट होते ही रहता है और चेतना अनश्वर है, स्थिर है। दूसरे वर्ग के विचारक पदार्थ से चेतना की उत्पत्ति मानते हैं। प्रकृति की भौतिक क्रिया से पदार्थ की रचना होती है और आदिम मनुष्य अपने जीवन यापन के लिए, अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए निरंतर इन्हीं पदार्थों से टकराते हैं, द्वन्द्व करते हैं। इसी द्वन्द्व से उनकी चेतना या सोच या विचार पैदा होता है। चेतना ने ही मनुष्य के भोजन के लिए पत्थर को नुकीले हथियार में बदला। चेतना ने ही चकमक पत्थर से आग को जन्म दिया। चेतना ने ही खाद्य-अखाद्य में अंतर किया और चेतना ने ही मानव को अन्य पशुओं से अलग किया। चेतना और प्रकृति का द्वन्द्वात्मक संबंध लगातार चलते रहता है जिससे प्रकृति में बदलाव की गति दिखायी देती है और इसी के साथ चेतना भी विकास की दिशा में निरंतर गतिशील रहती है।

मेरा मकसद यहां भौतिकवादी द्वन्द्ववाद की सैद्धान्तिकी की व्याख्या करना नहीं है बल्कि उस मूल सूत्र को पकड़ने की है जिसके भीतर से मिथ की दुनिया खड़ी होती है। चेतना ने मनुष्य की आवश्यकताओं को न तो पैदा किया है औ न ही विकसित किया है। वरन् अपनी आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर निर्भर रहने वाले मानव की चेतना उनके क्रिया-कलापों और उत्पादन संबंधों से ही विकसित हुई है। इसी उत्पादन संबंध ने आदिम मनुष्य को एक दूसरे से जोड़ा है। उनमें समूह की चेतना पैदा की है। इन्हीं संबंधों ने उनमें सामाजिक चेतना का विकास किया है। व्यक्ति से समाज की यात्रा के मूल में मानव की जरूरत के लिए प्रकृति से टकराना और उत्पादन संबंधों का विकास